पेरिस
१ जुलाई, २००६

संदेश संख्या – ६६
योग और उसके गहरे आयाम

कुछ दिनों पहले एक फ्रांसिसी पुलिस अधिकारी (पु.) के साथ सत्संग (अतीत के पूर्वाग्रह से मुक्त एवं वर्तमान के बोध में होना) हुआ । वह हठयोग, मन्त्रयोग जानता था और शिवेन्दु (शि.) से क्रियायोग की दीक्षा भी ले चुका था।

पु. : जब प्रत्यक्षबोध हेतु जटिल अवधारणाओं एवं अंधविश्वासों से मुक्त तथा गम्भीर दर्शन से युक्त सरल क्रियायोग उपलब्ध है तो लोग अत्यधिक कठिन एवं अधिक समय लेने वाले हठयोग और मन्त्रयोग का अभ्यास क्यों करते हैं ?

शि. : सरलता आकर्षक और उत्तेजक नहीं होती । यह मन की वास्तविक स्थिति अर्थात् वेदना एवं उत्तेजना से वांछित पलायन में मदद नहीं करती। अतः सहजबोध कठिन हो जाता है और जटिल चीजों का स्वागत किया जाता है। सामान्य बुद्धि असामान्य हो जाती है और शान्ति विरोधाभासी प्रतीत होती है। आनन्दपूर्ण अस्तित्व की अपेक्षा सुखानुभूति को अधिक महत्व दिया जाता है । जबकि यह सुखानुभूति और कुछ नहीं, बल्कि दुःख–भोग की तैयारी मात्र है, उसकी पूर्वावस्था है । ऐसे में, जल का महत्व नहीं होता जबकि शराब का है। इसी प्रकार गुणयुक्त सब्जी एवं फल को वह महत्व नहीं मिलता जो मांस और धूम्रपान को उपलब्ध है । हठयोग एवं मन्त्रयोग का बाजारीकरण सम्भव है जबकि क्रिया–योग का बाजारीकरण नहीं हो सकता। इसीलिए एक हठयोगी या मन्त्रयोगी अरबपति हो सकता है किन्तु क्रियायोगी नहीं।

यदि एक नटखट बालक पढ़ाई के लिए शान्ति से नहीं बैठ पाता है और उसे पढ़ाई का आदेश दिया जाता है, तब वह बालक और अशांत हो जाता है। उसका मन और उपद्रवी हो जाता है । लेकिन यदि उसे नजदीक के एक बड़े बगीचे का सात चक्कर लगाने को कहा जाय तो दौड़ने के बाद वही बच्चा शान्तिपूर्वक अपने स्थान पर बैठकर पढ़ने लगता है । उसी तरह, जब आप बहुचर्चित हठयोग की कठिनता से एवं लगातार मन्त्रोच्चारण से उत्पन्न हुई नीरसता से थक जाते हैं तब आप क्रियायोग के स्वाध्याय, तप (अभ्यास) एवं बोध द्वारा आत्मज्ञान की प्रक्रिया के लिए तैयार हो सकते हैं । विघटन, असामंजस्य, विभाजन, अव्यवस्था, भ्रांति, विखण्डन, अलगाव, परस्पर विपरीतों, वर्गीकरण, द्वन्द्व आदि से मुक्ति योग है । यदि योग का अर्थ केवल शारीरिक स्वास्थ्यलाभ कार्यक्रमों से होता, जैसा कि हठयोग में माना जाता है, तो जिमनों एवं सर्कस के कलाकारों को उच्च योगी के रूप में आदर दिया जाता।

ऋषि पतंजलि ने 'योगसूत्र' में 'समाधि पाद' को पहले रखा है और उसके बाद ''साधना पाद'' जिसका अर्थ है 'मुक्ति' प्रारम्भ में ही होनी चाहिए। यदि कोई इसे स्वाभाविक रूप से नहीं देख पाता तो उसे चिन्ता या आकांक्षा रहित होकर किसी अनुकूल योग का अभ्यास करते हुए प्रज्ञा की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस तरह हठयोग एवं मंत्रयोग का भी निश्चित स्थान है । फिर भी, अहंकार इसे नहीं समझता । यह या तो किसी चीज में अत्यन्त जुड़ाव महसूस करता है या फिर, उसका विरोधी बन जाता है। अत्यधिक मन्त्रोच्चारण से 'मन्दता' उत्पन्न होती है न कि स्थिरता और फिर स्थिर किया गया 'मन' वस्तुतः स्थिर नहीं होता । लेकिन यह आशा की जाती है और दावा भी किया जाता है कि केवल मन्त्रोच्चारण से ही मोक्ष संभव है।

पंडित बात बदै सो झूठा।
राम कहे जगतगति पावै, खांड़ कहै मुख मीठा।
धन कहे धनिक जो होवै, निरधन रहै न कोई।
बिनु देखे बिनु दरस–परस के, नाम रटे का होई ।

पुजारी जो कहता है वह झूठ है । यदि राम–राम के बार–बार उच्चारण से मोक्ष पाया जा सकता है तो गुड़ के उच्चारण से मुँह मीठा हो जाना चाहिए। 'धन' शब्द के उच्चारण से यदि धनी होना सम्भव हो तो पृथ्वी पर कोई गरीब नहीं होता। अतः बिना दर्शन, स्पर्श एवं बोध के केवल 'राम' रटने से क्या होगा ?

लेकिन हमारा मिथ्याभिमान और निहित स्वार्थ सत्य–दर्शन नहीं होने देता तथा आत्मकेन्द्रित गतिविधियों से ऊपर नहीं जाने देता । योग का सार है – अकृत्रिमता, अर्थात् सहजता और इस सहजता रूपी रिक्तता से ही दर्शन सम्भव है । यह सत्य दर्शन ही सद्गुण है । विभाजनरहित चेतना की अवस्था में हुआ सत्य दर्शन ही सजगता है । यही चैतन्य का आगमन है, जो भ्रांति 'मैं' के सभी प्रकार में संग्रहात्मक अनुकरणात्मक, पुनरावृत्तिमूलक तथा रक्षात्मक–वृत्तियों का पूर्णरूपेण नाश कर देता है । विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक अभ्यासों के माध्यम से भ्रांति ''मैं'' से चरणबद्ध रूप से मुक्ति हेतु प्रयास करना आध्यात्मिक मंडी का अनर्गल प्रलाप मात्र है जबकि विश्लेषण एवं आत्मनिरीक्षण द्वारा 'मैं' के मूल को चरणबद्ध ढंग से काटने का प्रयास करना, चिकित्सा बाजार का मूढ़तापूर्ण निरर्थक प्रयास मात्र है ।

केवल तथ्य का अस्तित्व होता है । उस तथ्य के संबंध में विचारों, मतों, मूल्यांकन, निर्णय आदि का नहीं। तथ्य का सामना करना मात्र ही मुक्ति है, न कि उस तथ्य के पक्ष या विपक्ष में विचारों को लाकर उसका वर्द्धन करना या उससे संघर्ष करना ।

ईश्वर अर्थात् शुद्ध समझदारी निश्चित ही मुक्ति प्रदान करती है, परन्तु तभी, जब उसका पूजा करने वाला ''मैं'' नहीं होता। भगवान धर्म के बाजार में क्रय–विक्रय का पदार्थ नहीं है। ईश्वर को उसके ही विपरीतों जैसे कि लोभ, भय, विश्वास आदि के माध्यम से नहीं जाना जा सकता। सर्वव्यापकता में परस्पर विपरीतों के संघर्ष रूपी अंधकार का कोई स्थान नहीं। यह द्वैत के अंधकार से परे की अवस्था है।

जय योग।